19वीं शताब्दी में जनजातीय (आदिवासी) आंदोलन

19वीं शताब्दी में विदेशी शासन और उनकी बुराइयों के खिलाफ कई आदिवासी आंदोलन हुए। ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ जनजातीय या आदिवासी क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की चुनौतियाँ खड़ी हो गयी। उनमें से कई ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद और ब्रिटिश सत्ता के विस्तार के दौरान सामने आयी। 1765 के बाद अंग्रेजों ने **बिहार, असम और खासी क्षेत्र के पहाड़ी इलाकों** में अपना विस्तार शुरू किया। जिसके परिणामस्वरूप आदिवासी के बीच प्रतिरोध की भावना पैदा हुई। साथ ही गैर-आदिवासियों के आगमन और बसने के कारण स्थानीय आबादी भी प्रभावित हुई। **भूमि जब्ती** में नए परिवर्तन,**खोई हुई स्वतंत्रता,** प्रशासनिक नवाचारों की शुरूआत, स्थानीय स्वायत्तता में **विदेशी घुसपैठ**, **महाजनों द्वारा आर्थिक शोषण,** सामाजिक जीवन आदि ने आदिवासियों के बीच संदेह को जन्म दिया और आदिवासियों को यह उनकी संस्कृति और आर्थिक स्थिति में गड़बड़ी के रूप में महसूस हुआ। **जातीय संबंध** आदिवासी विरोध की एक बुनियादी और महत्वपूर्ण विशेषता थी क्योंकि उन्होंने स्वयं को एक आदिवासी पहचान के रूप में देखते थे। 19वीं सदी के आदिवासी विरोध को इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है:

1857 से पहले का समय:

- 1857 से पूर्व, भारत में 20 से अधिक बड़े और छोटे आदिवासी विद्रोह हुए थे। ऐसे अधिकांश विद्रोह स्थानीय प्रकृति के थे और तत्कालिक कारकों के परिणाम थे। **उदाहरण के लिए**- हो, मुंडा, कोइ आन्दोलन छोटानागपुर क्षेत्र में हुए, उनके क्षेत्र में संदिग्ध घुसपैठ के कारण भीलों के विद्रोह खानदेश की पहाड़ियों में केंद्रित थे, राजमहल पहाड़ियों में संथाल, असम में अहोम विद्रोह, खासी पहाड़ियों में खासी विद्रोह, नई भूमि प्रशासनिक नीति के कारण होने वाली परेशानी के कारण **मालाबार तट पर माप्पीला विद्रोह हुआ**।
- इस अवधि के दौरान, आदिवासियों के पास **भारत में ब्रिटिश शासन की उचित समझ** का अभाव था। इसलिए उनका तात्कालिक लक्ष्य स्थानीय जमींदार, धन उधार देने वाले और स्थानीय अधिकारी थे।
- ये आदिवासी आंदोलन **प्रकृति में अलग अलग** थे। इनके पीछे न तो उचित संगठन था और न ही उचित योजना।
- अधिकांश आदिवासी प्रकृति में **गैर-प्रगतिशील और पिछड़े** थे। उन्होंने पुराने तरीकों को स्थापित करने की कोशिश की चाहे वह स्थानीय आदिवासी रीति-रिवाजों या जमींदारी प्रथा के रूप में हो।

1857 के बाद का समय:

- आदिवासी आंदोलन का अधिकांश चरित्र वही रहा लेकिन उनका दृष्टिकोण बदलने लगा। **अंग्रेजों, जमींदारों, साहूकारो (धन उधार देने वाले) और** बाहरी (दिकुस) के बीच सांठगांठ को आदिवासी समझने लगे। उदाहरण के लिए "बिरसा मुंडा कहते थे-" साहब- साहब इक टोपी "(ब्रिस्टिशर्स- ज़मींदार समान हैं)।

- जनजातीय विरोध ने अपने करिश्माई नेताओं से अपनी प्रेरणा वापस ले ली, जो अक्सर अलौकिक शक्तियों का दावा करते थे, उदाहरण के लिए- सिद्धू और कान्हो, संथाल विद्रोह के नेताओं ने अपने समर्थकों से कहा कि कोई भी हथियार उन्हें नहीं मार सकता। इसी प्रकार, बिरसा ने अपने अनुयायियों को बताया कि सिंह बोंगा (आदिवासी भगवान) उनके सपने में आया था और बाहरी लोगों से लड़ने के लिए कहा। इसी प्रकार सतयुग और धर्मयुग की अवधारणाओं को आदिवासी आंदोलनों के अंधविश्वासी स्वरूप का निरूपण किया गया।
- जनजातीय विरोध ने एक **अद्वितीय सांस्कृतिक पहचान** का सीमांकन किया जो प्रकृति में विशिष्ट था। एक जनजाति के अपने नियम, प्रथा और परंपरा होती है, जो बाहरी लोगों के साथ-साथ विदेशियों से भी टकराती है। आदिवासी पहचान भारत में आदिवासी विरोध का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा था।
- अधिकांश आदिवासी आंदोलन बाहरी लोगों के खिलाफ निर्देशित किए गए थे और अन्य आदिवासियों पर बाहरी लोगों की मदद करने का संदेह होने तक हमला नहीं किया जाता था। धन-उधारदाताओं (साहूकारो) और जमींदारों के खाते आदिवासियों के मुख्य लक्ष्य थे। आदिवासि उधार और ब्याज से बचने के लिए इन खातो को जलाने की कोशिश करते थे।

हालाँकि, ये आदिवासी आंदोलन आदिवासी विद्रोहों की प्रकृति के कारण अंततः विफल हो गए क्योंकि वे पिछड़े हुए थे, बिखरे हुए थे और एक मजबूत आंदोलन का रूप लेने में विफल रहे। इन आंदोलन के नेताओं के पास शासन और उनके जनजाति के विकास के बारे में कोई भविष्य की योजना नहीं थी। **अंधविश्वास और नशा जैसे आदिवासी समाजों के भीतर निहित कमजोरी भी आंदोलन की विफलता का कारण बन गई। आधुनिक हथियारों और अनुशासित सैनिको** से लैस अंग्रेजी सेना ने आसानी से आदिम और अप्रशिक्षित आदिवासियों के झुंडों को हरा दिया, जो तलवार, धनुष-बाण, हाथ की कुल्हाड़ियों से लड़ रहे थे। उदाहरण के लिए - संथाल विद्रोह में हजारों संथाल ड्रम की आवाज से एकत्र हुए और उन्हें बिना अधिक प्रयास के अंग्रेजों द्वारा गोली मार दी गई। सबसे महत्वपूर्ण था **भारतीय जनता के साथ-साथ राष्ट्रीय नेताओं और आम जनता के समर्थन की कमी** और अंततः ये आंदोलन अलग-थलग पड़ गए। लेकिन आदिवासियों का संघर्ष व्यर्थ नहीं गया। स्वतंत्र भारत ने आदिवासी अधिकारों और आकांक्षाओं को विधिवत मान्यता दी।